तृतीय : अध्याय

पद्य उच्चारण, काव्य पाठ तथा लौकिक छन्द परिचय

छन्द-काव्य में सङ्गीतात्मकता तथा लयबद्धता लाने के लिए शब्दों की जिस व्यवस्था तथा परिमाप का प्रयोग किया जाता है उसे छन्द कहते हैं। इसके पूर्व इससे सम्बन्धित कुछ अन्य परिभाषाओं को समझना आवश्यक है।

☞ ***अक्षर*** -शब्द का वह भाग, जो एक ही बार में उच्चारित किया जा सके 'अक्षर' कहलाता है। अर्थात् एक या एक से अधिक व्यञ्जन के सहित या रहित एक स्वरवर्ण अक्षर है। जैसे- 'इन्द्र' में दो अक्षर हैं। 'इ' और 'न्द्र'। अंग्रेजी में इसके लिये Syllable शब्द व्यवहृत होता है।

☞ ***मात्रा***-समय का वह भाग, जो एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण में लगता है, मात्रा है।

☞ ***वृत्त***-ये तीन प्रकार के होते हैं–

1. *समवृत्त*-इसमें सभी चरणों की अक्षर संख्या समान होती है।

2. *अर्द्धसमवृत्त*–इसमें प्रथम चरणकी अक्षरसंख्या तृतीयचरण के समान और द्वितीय चरण की अक्षरसंख्या चतुर्थ चरण के समान होती है। जैसे पुष्पिताग्रा, सुन्दरी इत्यादि।

3. *विषमवृत्त*–इसमें अक्षरसंख्या की दृष्टि से चारों चरण एक दूसरे से भिन्न (असमान) होते हैं। जैसे-उद्गता इत्यादि।

इन वृत्तों के निर्धारक 'अक्षर' दो *प्रकार के होते हैं* –

1. *लघु* – वह अक्षर जिसका स्वर ह्रस्व होता है। जैसे 'राम' में 'म'।

2. *गुरु* – वह अक्षर जिसका स्वर दीर्घ होता है। जैसे 'राम' में 'रा'।

लेकिन कुछ दशाओं में ह्रस्व स्वर भी गुरु हो जाता है जैसे-1. अनुस्वारयुक्त, 2. विसर्गयुक्त, 3. संयोगपूर्वक, 4. पाद के अन्त में स्थित ह्रस्व-स्वर गुरु माना जाता है।

अक्षरों में मात्राओं की गणना में सुविधा के लिये 'गण' की कल्पना की गई है। वृत्त छन्दों में गण तीन-तीन अक्षरों के समूह से और जाति-छन्दों में चार-चार मात्राओं के समूह से बनते हैं।

वृत्तों में प्रयुक्त गण आठ प्रकार के हैं -

यगण	मगण	तगण	रगण	भगण	नगण	सगण
।SS	SSS	SS।	S।S	S।।	।।।	।।S

इनके स्वरूपज्ञान के लिए निम्नलिखित सूत्र प्रचलित है :-

☞ **यमाताराजभानसलगाः।**

यति – किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षण भर रुकना पड़ता है, वहाँ पद्य की 'यति' होती है इसे विच्छेद, विराम, विरति आदि भी कहा जाता है।

1. समवृत्त

श्लोक (अनुष्टुप्) (8 अक्षर)

। S S ।S।

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं, सर्वत्र लघुपञ्चमम्।

। S S ।S।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं, सप्तमं दीर्घमन्ययोः ।। (श्रुतबोध)

सामान्यतया इस छन्द के प्रत्येक चरण में छठा अक्षर गुरु और पाँचवा अक्षर लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे और चौथे चरण में लघु तथा पहले और तीसरे चरण में गुरु होता है। उदाहरण -

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

2. **इन्द्रवज्रा** - (5 + 6) अक्षर

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

SS। S।। ।S। S S

त त ज ग ग

अर्थात्-जिस छन्द के सभी चरणों में क्रमशः दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं, उसे इन्द्रवज्रा कहते हैं। इसमें 5 और 6 पर यति होती है। उदाहरण-

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा
रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ
यो गोकुलं गोपकुलं च सुस्थं
चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ।।

3. उपेन्द्रवज्रा – (5 + 6) अक्षर

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

ज त ज ग ग

अथवा - **उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।**

अर्थात् - उपेन्द्रवज्रा में जगण, तगण, जगण और दो गुरु होते हैं अथवा यदि इन्द्रवज्रा में प्रत्येक चरण का प्रथमाक्षर लघु हो तो उसे उपेन्द्रवज्रा कहते हैं। उदाहरण-

उपेन्द्र ! वज्रादिमणिच्छटाभि विभूषणानां छुरितं वपुस्ते ।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानम् सुरद्रूमूले मणिमण्डपस्थम् ।।

4. रथोद्धता– (4 + 7) अक्षर या – (3 + 8) अक्षर

रात्परैर्नरलगै रतोद्धता ।

ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ । ऽ

र न र ल ग

अर्थात् - जिस छन्द के प्रत्येक चरण में र, न, र, लघु और गुरु हों, उसे रथोद्धता कहते हैं। उदाहरण -

राधिका दधिविलोडनस्थिता कृष्णवेणुनिनदैरथोद्धता ।
यामुनं तटनिकुञ्जमलसा सा जगाम सलिलाहृतिच्छलात् ।।

5. वंशस्थ (वंशस्थवृत्त, वंशस्तनित)– (5 + 7) अक्षर

जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

ज त ज र

अर्थात्- वंशस्थ के प्रत्येक पाद में ज, त, ज, र रहते हैं।

उदाहरण -

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जग- ज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि ।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बरा- द्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिः हरिः ।।

6. तोटक– (4 + 4 + 4) अक्षर

वद तोटकमब्धिसकारयुतम्

IIS IIS IIS IIS

स स स स

अर्थात् - तोटक छन्द के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। चार-चार अक्षरों पर विराम होता है। उदाहरण -

यमुनातटमच्युतकेलिकला - लसदङ्घ्रिसरोरुहसङ्गरुचिम् ।
मुदितोऽट कलेरपनेतुमघं यदि चेच्छसि जन्म निजं सफलम् ।।

7. भुजङ्गप्रयात - (6 + 6) अक्षर

भुजङ्गप्रयातं चतुर्भियकारैः ।

ISS ISS ISS ISS

य य य य

अर्थात् - भुजङ्गप्रयात के प्रथम चरण में चार यगण होते हैं। छः छः अक्षरों पर विराम होता है। उदाहरण -

धनैनिष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ।।

8. द्रुतविलम्बित - (4 + 8 अथवा 4 + 4 + 4) अक्षर

द्रुतविलम्वितमाह नभौ भरौ

III SII SII SIS

न भ भ र

द्रुतविलम्बित छन्द के प्रत्येक चरण में नगण, दो भगण और रगण होते हैं। उदाहरण -

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।

9. वसन्ततिलका– (8+ 6) अक्षर

(वसन्ततिलका, उद्धर्षिणी, सिंहोन्नता)

उक्ता वसंततिलका तभजा जगौ गः ।

SSI SII ISI ISI S S

त भ ज ज ग ग

अर्थात् वसन्ततिलका के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। उदाहरण –

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ।।

10. मालिनी (8 + 7) अक्षर

ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।

III III SSS ISS ISS

न न म य य

अर्थात् मालिनी के प्रत्येक चरण में दो नगण, मगण और दो यगण होते हैं और आठवें तथा फिर सातवें अक्षर के बाद यति होती है।

असितगिरिसमंस्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।

11. शिखरिणी (6 + 11) अक्षर

रसैरुद्रेश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।

ISS SSS III ISS III I S

य म न स भ ल ग

अर्थात् – शिखरिणी क प्रत्येक चरण में य, म, न, स, भ, लघु और गुरु होते हैं। विराम 6 और फिर 11 अक्षरों के बाद होता है।

उदाहरण – **पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः**
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।।

12. मन्दाक्रान्ता - (4 + 6 + 7) अक्षर

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मोभनौतौयुग्मम्।

ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ
म	भ	न	त	त	ग	ग

अर्थात्-मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक चरण में म, भ, न, त, त, गुरु और गुरु होते हैं। विराम 4, फिर 6 और 7 अक्षरों के बाद होता है। उदाहरण -

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरणं सर्वलोकैकनाथम् ।।

13. शार्दूलविक्रीडित - (12 + 7) अक्षर

सूर्याश्वैमसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

अथवा

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शादूर्लविक्रीडितम् ।

ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ
म	स	ज	स	त	त	ग

अर्थात् - शार्दूलविक्रीडित के प्रत्येक चरण में म, स, ज, स, त, त, गुरु होते हैं। बारहवें और फिर सातवें अक्षर पर यति होती है।

उदाहरण :-

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणा वरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

14. स्रग्धरा – (7 + 7 + 7) अक्षर

भ्रभ्नैर्यानां श्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

SSS	SIS	SII	III	ISS	ISS	ISS
म	र	भ	न	य	य	य

अर्थात् –स्रग्धरा के प्रत्येक चरण में म, र, भ, न, य, य और य होते हैं और सात–सात अक्षरों पर यति होती है।

उदाहरण –

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।

15. सुन्दरी *(वैतालीय या वियोगिनी)*

अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभरा ल्गौ यदि सुन्दरी तदा।

IIS	IIS	ISI	S	IIS	SII	SIS	I S
स	**स**	**ज**	**गु**	**स**	**भ**	**र**	**ल गु**

अर्थात्–यदि प्रथम और तृतीय चरण में दो सगण, एक जगण और एक गुरु हों एवं द्वितीय और चतुर्थ चरण में सगण, भगण, रगण, एक लघु और एक गुरु हों, तो 'सुन्दरी' छन्द होता है। उदाहरण –

यदवोचत वीक्ष्य मानिनी परितः स्नेहमयेन चक्षुषा ।
अपि वागाधिपस्य दुर्वचं, वचनं तद्विदधीत विस्मयम् ।।

16. आर्या

लक्ष्मैतत्सप्तगणा, गोपेता भवति नेह विषमे जः ।
षष्ठो जश्च नलघु वा, प्रथमेऽर्धे नियतमार्यायाः ।।
षष्ठे द्वितीयलात् परके न्ले मुखलाश्च सयतिपदनियमः ।
चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठो लः ।।

आर्या छन्द में प्रथम अर्धभाग में सात गण (चतुर्मात्रात्मक) और एक गुरु होते हैं, लेकिन विषम गणों (प्रथम, तृतीय पञ्चम और सप्तम) में जगण नही होता है और षष्ठ गण जगण होता है अथवा नगण और एक लघु। द्वितीय अर्धभाग में षष्ठ गण केवल लघुवर्णात्मक होता है।

(इस प्रकार आर्या के प्रथमार्थ में 7 × 4 + 2 = 30 मात्रायें और द्वितीयार्थ में 5 × 4 + 1 + 4 + 2= 27 मात्रायें होती हैं।)

षष्ठ गण में (चारों लघुवर्ण होने पर) दूसरे लघु से पूर्व यति होती है और सप्तम गण में चारों (लघुवर्ण होने पर) प्रथम लघु के पूर्व (अर्थात् षष्ठ गण के अन्त में) यति होती है।

उदाहरण -

1. जगणषष्ठा आर्या

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू
कुसुमिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम्।।

2. नलघुषष्ठा आर्या

सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।

श्रुतबोध इत्यादि कुछ पुस्तकों में आर्या छन्द का एक अन्य लक्षण दिया गया है, जो उपर्युक्त लक्षण की अपेक्षा अधिक सुबोध है –

यस्याः पादे प्रथमे, द्वादश मात्रस्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश सार्या।।

अर्थात्-जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय चरण में बारह-बारह द्वितीय चरण में अठारह और चतुर्थ चरण में पन्द्रह मात्रायें हैं। यह लक्षण उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में पूर्ण रूप से घटित होता है।

☞ ***आर्या नौ प्रकार की बतायी गयी है –***

1. पथ्या, 2. विपुला, 3. चपला, 4. मुखचपला,
5. जघनचपला, 6. गीति, 7. उपगीति, 8. उद्गीति,
9. आर्या गीति।

चतुर्थ : अध्याय

रस तथा अलङ्कार

रस - **"विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"** - विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से 'रस' की निष्पत्ति होती है। विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव से अभिव्यक्त सहृदयों के हृदय में विद्यमान 'रति' आदि स्थायी भाव 'रस' के स्वरूप में परिणत होता है। यह विशिष्ट अनुभूति है।

"विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।

रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्।।" साहित्यदर्पण ।।3।1।।

स्थायि भाव - मानव-हृदय में विद्यमान मानस-संस्कार, या वासना को ही 'भाव' कहते है; जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में चित्तवृत्ति के रूप में सुषुप्त्यवस्था में विद्यमान रहते हैं और अनुकूल अवसर मिलने पर जागृत हो उठते हैं। ये संस्कारस्वरूप 'भाव' मानव-हृदय में स्थायी रूप में विद्यमान रहने के कारण ही 'स्थायिभाव' कहे जाते हैं।

साहित्यदर्पणकार ने मानव-मन के असंख्य-संस्कारों (भावों) को कुल नौ वर्गों में वर्गीकृत किया है-

"रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च ।।" *(साहित्यदर्पण ।।3। 175।।)*

अर्थात्, - रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद या राम नामक कुल नौ 'स्थायिभाव' माने गये हैं। इनके भेद से ही रस के 9 भेद माने गये हैं।

रस भेद

"श्रृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः।

बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।।" *(साहित्यदर्पण ।।3।182।।)*

अर्थात्, श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शान्त के भेद से क्रमशः कुल नौ रस पाये जाते हैं।

रस की निष्पत्ति में आधारभूत उपादान कारण के रूप में नायक-नायिका, शुत्र, सिंह आदि तथा इसके उद्दीपन आदि में कारक परिवेश परिवेश, चेष्टाएँ आदि विभाव (क्रमशः आलम्बन विभाव तथा उद्दीपन विभाव) कहे जाते हैं।

रस निष्पति के लक्षण के रूप में तात्कालिक कार्य के रूप में प्रकट प्रभाव शारीरिक लक्षण जैसे-रोमाञ्च, हँसी, रोदन, आवेग आदि अनुभाव कहे जाते हैं।

रस निष्पत्ति के कारण अनुवर्ती/सहायक प्रतिक्रियात्मक चेष्टाऐं जैसे-लज्जा, चपलता, विषाद गर्व आदि संचारीभाव कहे जाते हैं।

1. ***श्रृङ्गार रस*** – इसका स्थायिभाव रति है इसके लक्षण है : **"रतिर्मनोऽनुकूलेऽथ मनसः प्रवणायितम्।"** अर्थात्, प्रिय वस्तु में मन के प्रेमपूर्ण उन्मुखीभाव को 'रति' कहते है। उदाहरण :-

विवृण्वती शैलसुताऽपि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्य्यस्तविलोचनेन ।। *(कु. सं. 3/68)*

यहाँ पर भगवान् शिव आलम्बन विभाव है, पूर्व वर्णित वसन्तसुषुमा उद्दीपन विभाव है, रोमाञ्चादि अनुभाव है, लज्जा व्यभिचारी भाव है। इन सबों से अभिव्यक्त पार्वती का अनुराग श्रृंगाररस के रूप में परिणत हो जाता है।

2. ***हास्य रस*** – इसका स्थायिभाव हास है इसके लक्षण है : **"वागादिवैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते।"** अर्थात् वाणी आदि के विकारों को देखकर चित्त का आह्लादित होना ही 'हास' है। उदाहरण :-

भिक्षो ! मांसनिषेवणं प्रकुरुषे ? किं मद्यं विना ?
मद्यञ्चापि तव प्रियम् ? प्रियमहो ! वाराङ्गनाभिः सह।
तासामर्थरुचिः कुतस्तव धनम् ? द्यूतेन चौर्येण वा,
चौर्यद्यूतपरिग्रहोऽपि भवतः ? नष्टस्य काऽन्या गतिः ।। *(सा. द. 6/257)*

यहाँ विनोदी भिक्षु विभाव है। मांसभक्षण अनुभाव है। (उत्तरोत्तर धर्मविरुद्ध निकृष्ट वस्तु की स्वीकारोक्ति रूपचाञ्चलय व्यभिचारीभााव है) इन सभी से पोषित होकर हास स्थायी हास्यरस बन जाता है।

3. ***करुण रस*** – इसका स्थायिभाव शोक है इसके लक्षण है : **"इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक्।"** अर्थात्, किसी प्रिय वस्तु के विनाश के कारण चित्त की व्याकुलता को ही 'शोक' कहते है। उदाहरण :-

अदृष्टदुःखो धर्मात्मा सर्वभूतप्रियंवदः।
मयि जातो दशरथात् कथमुञ्छेन वर्त्तयेत् ?।।
यस्य भृत्याश्च दासाश्च स्वादून्यन्नानि भुञ्जते।
कथं स भोक्ष्यते रामो वने मूलफलान्ययम् ?।। *(वाल्मीकीयरामायणे 24/2,3)*

यहाँ वनवासी राम आलम्बन विभाव है तथा प्रिय बोलना उद्दीपन विभाव है। विलापयुक्त वचन अनुभाव है। ग्लानि व्यभिचारीभाव है। इन सभी से व्यक्त होकर कौशल्या का शोक करुण रस का रूप धारण कर लेता है।

4. ***रौद्र रस*** – इसका स्थायिभाव क्रोध है इसके लक्षण है : **"प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते।"** अर्थात्, शत्रुओं के विषय में तीव्रता के

उद्बोध का ही दूसरा नाम 'क्रोध' है। उदाहरण :-

कृतमनुमतं दृष्टं वां यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्य्यादैर्भवद्भिरुदयुधैः।
नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां सभीमकिरीटिना-
मयमहमसृङ्मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।। *(वे. सं. 3/24)*

यहाँ पाण्डव आलम्बन विभाव है, पितृवध उद्दीपन विभाव है, गर्व तथा अमर्ष व्यभिचारी भाव है। इनसे परिपुष्ट होकर अश्वत्थामा का क्रोध सहृदयों के लिए रौद्र रस का आलम्बन कराता है।

5. ***वीर रस*** - इसका स्थायिभाव उत्साह है इसके लक्षण है : **"कार्यारम्भेशु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।"** अर्थात्, कार्य करने में स्थिरता तथा उत्कट आवेश (संरम्भ) को ही उत्साह कहते है। उदाहरण :-

क्षुद्राः ! सन्त्रासमेते विजहत हरयः ! क्षुण्णशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्तः।
सौमित्रे ! तिष्ठ, पात्रं त्वमसि न हि रुषां, नन्वहं मेघनादः
किञ्चिद् भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि।।*(हनुमन्नाटके 12/2)*

यहाँ राम आलम्बन विभाव है, सेतुबन्धन उद्दीपन विभाव है, बलहीनों पर प्रहार न करना और रामान्वेषण अनुभाव है, इन्द्र गजविदारणादि स्मृति व्यभिचारी भाव है। इससे अभिव्यक्त मेघनाद का उत्साह सहृदयों के हृदय में वीर रस का आस्वादन कराता है।

6. ***भयानक रस***-इसका स्थायिभाव भय है इसके लक्षण है : **"रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्।"** अर्थात्, किसी रौद्र (सिंहादि) की शक्ति से उत्पन्न, चित्त को व्याकुल कर देने वाला भाव 'भय' कहलाता है। उदाहरण :-

नष्टं वर्षवरैर्मनुष्यगणनाऽभावादपास्य त्रपा-
मन्तः कञ्चुकिकञ्चुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।
पर्य्यन्ताऽऽश्रयिभिर्निजस्य सदृशं नाम्नः किरातैः कृतं
कुब्जा नीचतयैव यान्ति शनकैरात्मेक्षणाऽऽशङ्किनः।। *(रत्नावली 2/3)*

यहाँ बन्दर बना विदूषक आलम्बन विभाव है। उसकी विभिन्न चेष्टायें उद्दीपन विभाव है। भय से वर्षवरों का पलायन अनुभाव है। त्रास आदि व्यभिचारी भाव है। इससे पुष्ट होकर भयरूपी स्थायी भाव सहृदय ग्राही भयानक रस बन जाता है।

7. ***वीभत्स रस*** - इसका स्थायिभाव जुगुप्सा है इसके लक्षण है : **"दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा।"** अर्थात्, दोषदर्शनादि के कारण किसी वस्तु में उत्पन्न घृणा को 'जुगुप्सा' कहते हैं। उदाहरण :-

उत्कृत्योत्कृत्य कृतिं प्रथममथ पृथूच्छोथभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठपिण्डावद्यवयसुलभान्युग्रपूतीनि जग्धवा।
आर्तः पर्य्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ।।*(मालतीमाधवे 5।16)*

यहाँ पर प्रेत आलम्बन-विभाव है, दुर्गन्ध उद्दीपन है। चर्म का उधेड़ना अनुभाव है और हर्ष सञ्चारीभाव है। इनसे पुष्ट होकर जुगुप्सा रूपी स्थायी भाव वीभत्स रस बन जाता है।

8. ***अद्भुत रस***-इसका स्थायिभाव विस्मय है इसके लक्षण है : **"विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।।"** अर्थात्, लोकसीमातिक्रान्त, अलौकिक सामर्थ्य से युक्त किसी वस्तु के दर्शन इत्यादि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को 'विस्मय' कहते हैं। उदाहरण :-

मानुषीभ्यः कथं नु स्यादस्य: रूपस्य सम्भवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।। *(अभि. शा. 1।25)*

इस प्रकार के लोकोत्तर रूप वाली कन्या की उत्पत्ति मानवी स्त्री से सम्भव नहीं है, क्योंकि पृथ्वी तल से चन्द्रमा का उदय नहीं होता।

9. ***शान्त रस***-इसका स्थायिभाव निर्वेद (शम) है इसके लक्षण है: **"शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम्।"** अर्थात्, निःस्पृहता की अवस्था में, अथवा- सभी प्रकार की इच्छाओं के शान्त हो जाने पर आत्मा के विश्राम से उत्पन्न सुख का ही अपर नाम 'शम' या 'निर्वेद' है। उदाहरण :-

अहो वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
मणौ वा लोष्ठे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशौ यान्तु दिवसाः
कचित् पुण्येऽरण्ये शिव ! शिव ! शिवेति प्रलपतः ।। *(वैराग्यशतके 8)*

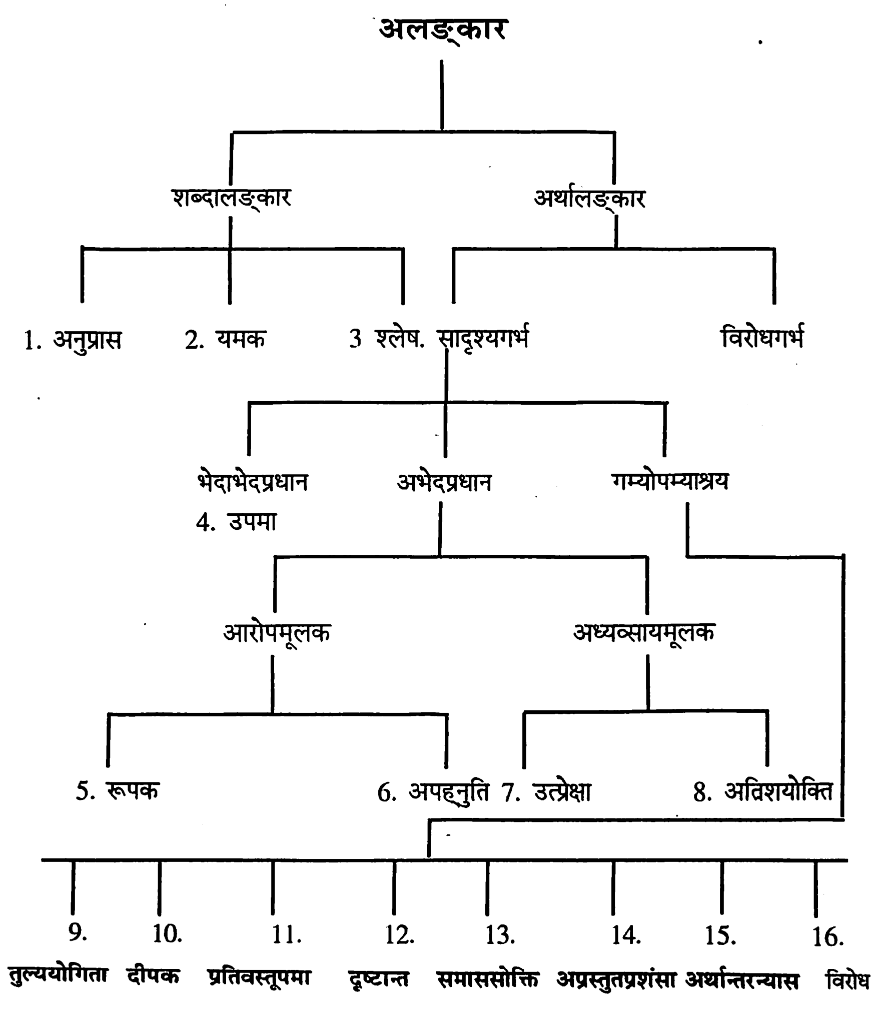
यहाँ पर किसी विरक्त पुरुष ने अपनी स्थिति का चित्रण किया है। वक्ता का निर्वेद काव्य के चमत्कार से सहृदयों के द्वारा शान्त रस के रूप में आस्वादित होता है। सर्प आदि आलम्बन विभाव, पुण्याश्रम उद्दीपन विभाव, तुच्छत्व दृष्टि अनुभाव तथा रोमाञ्चादि व्यभिचारी भाव है। इनसे परिपुष्ट निर्वेदरूप स्थायी भाव शान्त रस की प्राप्त अनुभूति कराता है। कुछ लोग चमत्कार पूर्ण होने के कारण वत्सल नामक दशवाँ रस भी मानते हैं।

अलङ्कार

शब्द एवं अर्थ के विशेष प्रयोग द्वारा कवि जिस उक्ति वैशिष्ट्य को अपनी काव्य कुशलता के माध्यम से रचता है ऐसा प्रयोग काव्य का आभूषण या अलङ्कार कहा जाता है-

शब्दार्थयोः प्रसिद्ध्या वा कवेः प्रौढिवशेन वा।
हारादिवदलंकारसन्निवेशो मनोहरः।।

अलङ्कार के मुख्यतः दो भेद हैं :-



अनुप्रास

यह एक शब्दालङ्कार है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- "रस, भाव आदि के अनुसार (अनुरूप) (वर्णों का) प्रकृष्ट रूप से न्यास"। इसका लक्षण इस प्रकार है-**"अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।"**

अर्थात् स्वरों में विषमता रहने पर भी शब्दों का साम्य अनुप्रास कहलाता है।

अनुप्रास के पांच भेद हैं - 1. छेक (अनेकस्य सकृत), 2. वृत्ति (एकस्यापि असकृत्), 3. श्रुति, 4. अन्त्य और 5. लाट (शाब्द)। यहाँ वृत्त्यनुप्रास का एक उदाहरण दिया जा रहा है -

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूतान्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः।।

यहां 'रसोल्लासैरमी' में र-स का साम्य है। दूसरे चरण में क-ल की अनेक बार आवृत्ति हुई है। अन्य चरणों में भी शब्दसाम्य स्फुट रूप से द्रष्टव्य है। नीचे एक दूसरा उदाहरण दिया जा रहा है, जिसमें छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास दोनों ही है।

निवर्त्य सोऽनुव्रजतः कृतानतीनतीन्द्रियज्ञाननिधिर्नभःसदः ।
समासदत्सवितादैत्यसम्पदः पदं महेन्द्रालयचारु चक्रिणः ।।

यहाँ 'नतीनती' और 'पदः पदम्' में व्यञ्जनद्वय का सकृत्साम्य है। अतः छेकानुप्रास है। शेष अंश में वृत्त्यनुप्रास है। अनुप्रास अलङ्कार में मुख्य रूप से व्यञ्जनसमुदाय की सकृत्त या असकृत् आवृत्ति ही महत्वपूर्ण है।

2. यमक

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।

अर्थात् यदि अर्थ हो तो भिन्न अर्थवाले स्वर-व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक कहते हैं। समानार्थक शब्दों की आवृत्ति से यमक अलङ्कार नहीं होता । इस प्रकार यमक के उदाहरण में -

(1) कहीं दोनों (आवृत्त समुदाय) सार्थक होते हैं,
(2) कहीं दोनों निरर्थक और

(3) कहीं एक सार्थक और दूसरा निरर्थक होता है। आवृत्ति 'उसी क्रम से' होनी चाहिए। उदाहरण-

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपराग-परागतपङ्कजम्।
मृदुल-तान्त-लतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।

इस श्लोक में आवृत्त स्वर-व्यञ्जन समुदाय 'पलाश-पलाश' और 'सुरभि-सुरभि' सार्थक है, 'लतान्त-लतान्त' में पहला निरर्थक (क्योंकि पहले 'लतान्त' का ल' 'मृदुल' शब्द से गृहीत है। और दूसरा सार्थक है, और 'पराग-पराग' में दूसरा 'पराग' निरर्थक (क्योंकि इसमें अगले 'गत' शब्द का 'ग' गृहीत है) और पहला सार्थक हैं। इस श्लोक के चारों चरणों में यमक अलङ्कार है।

3. श्लेष

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

अर्थात् श्लिष्ट पदों से अनेक (एकाधिक) अर्थ का अभिधान होने पर श्लेषालङ्कार होता है।

यह वर्ण, प्रत्यय, लिङ्ग, प्रकृति, पद, विभक्ति, वचन और भाषा के श्लिष्ट होने से आठ प्रकार का होता है। नीचे वर्णश्लेष और पदश्लेष के क्रमशः उदाहरण दिये जा रहे हैं -

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तृरभून्न पतिष्यतः करसहस्त्रमपि ।।

अर्थ - विधि (दैव) या बिधु (चन्द्रमा) के प्रतिकूल होने पर सब साधन विफल हो जाते हैं। गिरने (अस्त होने) के समय सूर्य के हजार कर (किरण या हाथ) भी उसे सहारा न दे सके।

यहां 'विधौ' पद के 'औ' में श्लेष है, क्योंकि 'विधि' और 'विधु' दोनों के सप्तमी-एकवचन में 'विधौ' रूप बनता है।

पृथुकार्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव।
विलसत्करेणुगहनं सम्प्रति सममावयोः सदनम्।।

अर्थ-(कोई भिक्षुक किसी राजा से कहता है -) हे देव ! इस समय आपका और मेरा घर एक समान हो रहा है। आपके घर में पृथु (बड़े बड़े) कार्तस्वर (सोने के) पात्र बर्तन है और मेरा घर पृथुक (बालबच्चों) के आर्तस्वर (करुण क्रन्दन) का पात्र (स्थान) है। आपक घर में सभी परिजन भूषित (भूषणों से सुजज्जित) है और मेरे घर में सब भू + उषित भूमि पर पड़े हुए हैं। आपका घर बिलसत् (शोभमान) करेणुओं (हाथियों

से भरा है और मेरा घर बलसल्क (बिल में रहने वाले) चूहों की रेणु (मिट्टी) से भरा है। यहाँ पदों का भिन्न प्रकार से समासविच्छेद करने पर भिन्न अर्थ निकलते हैं।

अर्थालङ्कार

4. उपमा

इसका लक्षण इस प्रकार है-**साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।**

अर्थात् एक ही वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्यरहित वाच्यसादृश्य को उपमा कहते हैं।

उपमा के चार तत्व होते है- उपमेय, उपमान, साधारणधर्म और (औपम्य -) वाचक शब्द। चारों का प्रयोग होने पर पूर्णोपमा होती है और किसी एक या अधिक का अनुपादान होने पर लुप्तोपमा होती है। उदाहरण-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ बन्दे, पार्वतीपरमेश्वरौ ।।

यहाँ 'वागर्थौ' उपमान, 'पार्वतीपरमेश्वरौ' उपमेय, 'सम्पृक्तौ साधारणधर्म और 'इव' वाचक है, अतः यहाँ पूर्णोपमा है।

मुखमिन्दुर्यथा पाणिः पल्लवेन समः प्रिये।
वाचः सुधा इवोष्ठस्ते विम्बतुल्यो मनोऽश्मवत्।

अर्थ–हे प्रिये ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान, हाथ पल्लव के तुल्य, वाणी अमृत-सी, ओष्ठ बिम्बफल के सदृश और मन पत्थर जैसा है। यहाँ सर्वत्र धर्म (सुन्दर, कोमल, मीठी आदि) का अभाव है, इसलिये धर्मलुप्तोपमा है।

5. रूपक

यह एक आरोपमूलक अभेदप्रधान सादृश्यगर्भ अर्थालङ्कार है। इसक लक्षण इस प्रकार है -

रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे

अर्थात् जहाँ उपमान का उपमेय में आरोप हो, लेकिन उपमेय का निषेध (अपह्नव) न हो, वहाँ रूपक अलङ्कार होता है।

लक्षण में 'निरपह्नवे' शब्द अपह्नुति अलङ्कार से पार्थक्य बताने के लिये रखा गया है। *उदाहरण* -

जाज्वल्यमाना जगतः शान्तये समुपेयुषी।
व्यद्योतिष्ठ सभावेघामसौ नरिशिखित्रयी।।

अर्थ- जगत् के कल्याण के लिए एकत्र जलती हुई, मनुष्य (कृष्ण, उद्धव, बलराम) रूपी तीन अग्नियाँ (दक्षिण गार्हपत्य, आह्वनीय) सभारूपी वेदी पर चमकने लगीं। यहाँ सभा में वेदी का और नरत्रय में शिखित्रय का आरोप है। दूसरा उदाहरण -

लावण्यमधुभिः पूर्णमास्यमस्या विकस्वरम् ।

लोकलोचनरोलम्बकदम्बैः कैर्नं पीयते ।।

यहाँ लावण्य आदि में मधुत्व आदि का शाब्द और मुख में पद्म आदि का आर्थ आरोप है।

6. अपह्नुति

यह भी एक आरोपमूलक अभेदप्रधान सादृश्यगर्भ अर्थालङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है–**प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः ।**

अर्थात् यदि उपमेय का प्रतिषेध करके उपमान को स्थापित किया जाय तो अपह्नुति होती है। *उदाहरण -*

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।

नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः।।

अर्थ- यह आकाशमण्डल नहीं है, समुद्र है। ये तारे नहीं हैं, बल्कि नवीन फेनों के खण्ड हैं। यह चन्द्रमा नहीं है, वरन् कुण्डल मार कर बैठे हुए शेषनाग हैं और यह कलङ्क नहीं है, वरन् शेषनाग पर भगवान् विष्णु सो रहे हैं।

यहाँ आकाश आदि के स्वरूप का निषेध और समुद्रत्व आदि धर्मों का आरोप किया गया है।

7. उत्प्रेक्षा

यह एक अध्यवसायमूलक अभेदप्रधान सादृश्यगर्भ अर्थालङ्कार है। इसका लक्षण निम्न प्रकार है -**भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।**

अर्थात् प्रस्तुत (उपमेय) की अप्रस्तुत (उपमान) के रूप में सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा कहते हैं।

सम्भावना में एक कोटि प्रबल रहती है और संशय (संदेह) में दोनों या सभी कोटियां समान रहती है। उत्प्रेक्षालङ्कार में उपमान की ही कोटि प्रबल रहती है। *उदाहरण वाच्या -*

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।

असत्पुरुषसेवेव दृष्टिविफलतां गता ।।

अर्थ– ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अन्धकार अङ्गों में लेप लगा रहा है और आकाश काजल की वर्षा कर रहा है। दृष्टि असज्जन की सेवा के समान व्यर्थ हो गई है।

यहाँ प्रथम और द्वितीय में उत्प्रेक्षा है। यहां अन्धकार के प्रसार-रूप प्रकृत में लेपन और वर्षण रूप अप्रस्तुत की सम्भावना की गई है।

प्रतीयमाना –

तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् ।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया ।।

अर्थ– मानो इस लज्जा से कि गुणवान् (सूत्रयुक्त) हार के लिए स्थान नहीं दिया तन्वङ्गी के स्तनद्वय ने मुख नहीं प्रकट किया।

यहाँ 'लज्जयेव' न कहकर 'इव' आदि का प्रयोग न होने के कारण यह उत्प्रेक्षा प्रतीयमाना है।

8. अतिशयोक्ति

इसका लक्षण इस प्रकार है – **सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।** अर्थात् अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

विषय (उपमेय) का निगरण करके विषयी (उपमान) के साथ उसके अभेद ज्ञान को अध्यवसाय कहते हैं। उत्प्रेक्षा में उपमान का अनिश्चित रूप से कथन होता है, अतः यहां अध्यवसाय साध्य रहता है और अतिशयोक्ति में उसकी निश्चित रूप से प्रतीति होती है। अतः यहाँ अध्यवसाय सिद्ध होता है।

☞ **अतिशयोक्ति के भेद** –

1- भेद होने पर अभेद वर्णन करना,

2- अभेद होने पर भेद वर्णन करना,

3- सम्बन्ध रहने पर असम्बन्ध का वर्णन करना,

4- असम्बन्ध रहने पर सम्बन्ध का कथन करना और

5- कारण और कार्य के पौर्वापर्यनियम का व्यत्यय करना।

☞ भेद होने पर अभेद-वर्णन का उदाहरण –

कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम्।
कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात् ।।

यहाँ नायिका के केशपाश का मयूरपिच्छ के रूप में, उसके ललाट का लक्ष्मी के चन्द्रमा के रूप में, नेत्रों का कमलद्वय के रूप में, नासिका का तिलपुष्प के रूप में और अधरोष्ठ का मूंगे के रूप में अध्यवसान हुआ है।

9. तुल्ययोगिता

यह एक गम्योपम्यमूलक अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

पदार्थानां प्रस्तुतनामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एकधर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ।।

अर्थात् केवल प्रकृत या केवल अप्रकृत पदार्थों में एक धर्म के सम्बन्ध का नाम तुल्ययोगिता है। यह धर्म कहीं गुणरूप होता है, कहीं क्रियारूप।

1. *प्रस्तुतों (नियत या प्राकरणिक) का उदाहरण –*

अनुलेपनानि कुसुमान्यबलाः कृतमन्यवः पतिषु दीपदशाः।
समयेन तेन सुचिरं शयितप्रतिबोधतस्मरमबोधिषत।।

अर्थ– उस समय (सन्ध्या) ने बहुत देर तक (दिन भर) सोया हुआ कामदेव जिससे जग उठे इस प्रकार अनुलेपन (चन्दन, कस्तूरी आदि के लेपों), फूलों, पत्तियों पर क्रुद्ध अबलाओं और दीपकों की बत्तियों को प्रतिबोधित किया।

इसमें सन्ध्या का वर्णन प्रस्तुत होने से प्रस्तुत अनुलेपन आदि का बोधनक्रियारूप एक धर्म के साथ सम्बन्ध है।

2. *अप्रस्तुतों (अनियत या अप्राकरणिक) का उदाहरण –*

तदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते।
मालतीशशभूल्लेखाकदलीनां कठोरता ।

अर्थ – उस सुन्दरी के अङ्गों की कोमलता को देखने वाले किस मनुष्य के हृदय में मालती के पुष्प, चन्द्रमा की कला, और कदली के कोमल दल भी कठोर नहीं लगते? उसके कोमलतम शरीर को देखकर ये सब कठोर प्रतीत होते हैं।

10. दीपक

यह भी एक गम्यौपम्याश्रय अर्थालङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ।।

अर्थात् जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुत पदार्थों में एक धर्म का सम्बन्ध हो अथवा अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो, वहां दीपक अलङ्कार होता है। *उदाहरण* -

1- क्रियादीपक

बलावलेपादधुनापि पूर्ववत् प्रबाच्यते तेन जगज्जिगीषुणा।

सती च योषित्प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।

यहाँ प्रस्तुत निश्चल प्रकृति और अप्रस्तुत सती स्त्री का एक अनुगमनरूप क्रिया के साथ सम्बन्ध वर्णित है।

2- कारकदीपक

दूरं समागतवति त्वयि जीवनाथे, भिन्ना मनोभवशरेण तपस्विनी सा।

उत्तिष्ठति स्वपितिवासगृहं त्वदीय-मायाति याति हसति श्वसिति क्षणेन।।

11. प्रतिवस्तूपमा

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद् वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।

एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्।।

अर्थात् जिन दो वाक्यार्थों में सादृश्य गम्य (वाच्य नहीं) होता है, उनमें यदि एक ही साधारण धर्म को पृथक्-पृथक शब्दों से कहा जाय, तो प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है। जैसे -

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति।।

यहाँ आकर्षण और उत्तरलीकरण एक ही पदार्थ है, परन्तु इनका पृथक् शब्दों से निर्देश किया गया है।

यह (प्रतिवस्तूपमा) माला के रूप में भी मिलती है। जैसे -

विमल एव रविविशदः शशी प्रकृतिशोभन एव हि दर्पणः।

शिवगिरः शिवहाससहोदरः सहजसुन्दर एव हि सज्जनः।।

यहाँ चतुर्थ चरण उपमेय वाक्य है और प्रथम तीन पंक्तियों में उपमान वाक्य हैं। विमल', 'विशद', 'प्रकृतिशोभन' और 'सहजसुन्दर' अर्थततः एक ही हैं।

12. दृष्टान्त

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

अर्थात् दो वाक्यों में धर्मसहित वस्तु अर्थात् उपमान और उपमेय के प्रतिबिम्बन को दृष्टान्तालङ्कार कहते हैं। प्रतिबिम्बन का तात्पर्य है, कि सादृश्य विशेष-अवधान-गम्य होता है।

दृष्टान्तालङ्कार साधर्म्य और वैधर्म्य के भेद से दो प्रकार का होता है।

उदाहरण -

1. **साधर्म्य**

अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला।।

यहाँ इस आदि शब्दों के प्रयोग कि बिना भी 'मालतीमाला' के साथ 'सत्कविभणति' का और 'परिमल' के साथ 'गुणों' का सादृश्य प्रतीत होता है।

2. **वैधर्म्य**

त्वयि दृष्टे कुरङ्गाक्ष्याः स्त्रंसते मदनव्यथा।
दृष्टानुदयभाजीन्दौ ग्लानिः मुकुदसंहतेः।।

यहाँ कामिनी और कुमुदसहति, नायक और चन्द्रमा एवं मदनव्यथा और ग्लानि की समता प्रतीत होती है।

13. समासोक्ति

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणेः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः।।

अर्थात् जिस वाक्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित होने वाले कार्य, लिङ्ग और विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाय, वहाँ समासोक्ति अलङ्कार होता है। उदाहरण -

1. समान कार्य के द्वारा

व्याधूय यद्वसनमम्बुजलोचनाया वक्षोजयोः कनककुम्भविलासभाजोः।
आलिङ्गसि प्रबभमङ्गमशेषमस्या धन्यस्त्वमेव मलयाचलगन्धवाह।।

यहाँ हठकामुक और वायु का कार्य समान है, अतः प्रस्तुत (वायु) में अप्रस्तुत (हठकामुक) के व्यवहार का आरोप है।

2. समान लिङ्ग के द्वारा

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः।
अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो सन्ध्या भजते रविः।।

यहाँ सन्ध्या के स्त्रीलिङ्ग और सूर्य के पुल्लिङ्ग होने के कारण इनमें नायिका और नायक के व्यवहार का आरोप किया गया है।

3. विशेषणों का साम्य तीन प्रकार से होता है-

(क) श्लिष्ट होने के कारण

(ख) साधारणता (समानरूप से अन्वय) के कारण और

(ग) औपम्यगर्भता के कारण

14. अप्रस्तुतप्रशंसा

अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया। (का .प्र. 10, 12)

अर्थात् अप्राकरणिक (अप्रस्तुत) के वर्णन से प्राकरणिक (प्रस्तुत) के आक्षेप को अप्रस्तुतप्रशंसा कहते हैं। इसके पांच प्रकार होते हैं –

1. कार्ये प्रस्तुते अप्रस्तुतस्य कारणस्य वचनम् ।
2. निमित्ते " " कार्यस्य " ।
3. सामान्ये " " विशेषस्य " ।
4. विशेषे " " सामान्यस्य " ।
5. तुल्ये " " अन्यस्य तुल्यस्य " ।

तीन सम्बन्ध :-

1. कार्य कारण 2. विशेष-सामान्य और 3. सारूप्य

उदाहरण – *चतुर्थ प्रकार-*

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।।

यहाँ 'हम लोगों की अपेक्षा धूल भी श्रेष्ठ है', इस विशेष के प्रस्तुत होने पर सामान्य (देही) का अभिधान किया गया है।

उदाहरण – तृतीय प्रकार-

स्त्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमव्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।।

यहाँ ईश्वर की इच्छा से कहीं अहितकर भी हितकर हो जाते हैं और कहीं हितकर भी अहित करने लगते हैं' यह सामान्य प्रस्तुत है, परन्तु विशेष (विष और अमृत) का अभिधान किया गया है। इस प्रकार यहां विशेषमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा है।

15. अर्थान्तरन्यास

सामान्यं वा विशेषेष् विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।।

अर्थात् जहां विशेष के सामान्य का, सामान्य से विशेष का, कारण से कार्य का अथवा कार्य से कारण का साधर्म्य के द्वारा या वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण –

1. साधर्म्य के द्वारा विशेष से सामान्य का समर्थन–

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।।

यहाँ पूर्वार्ध का अर्थ सामान्य है, उसका समर्थन उत्तरार्ध की विशेष घटना के द्वारा साधर्म्य से किया गया है।

2. साधर्म्य के द्वारा सामान्य से विशेष का समर्थन–

यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।
विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः।।

अर्थ– जितना अर्थ है, उतने ही शब्दों वाली वाणी कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। बड़े लोग स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं।

यहाँ प्रथम वाक्य विशेष है, उसका समर्थन दूसरे सामान्य वाक्य से किया गया है।

16. विरोध

यह विरोधगर्भ अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः। (का. प्र. 12, 24)

अर्थात् वस्तुतः विरोध न होने पर भी जहाँ पर विरुद्ध के समान वर्णन हो, उसे विरोध अलङ्कार कहते हैं। विरोध वास्तविक नहीं होता, आपाततः प्रतीत होता है। यही कारण है कि कुछ आलङ्कारिक (अप्पयदीक्षित आदि) इसे विरोधाभास कहते हैं।

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः।

विरोध

जाति | गुण | क्रिया | द्रव्य

पहले का शेष अगले से विरोध रूप में यह 10 प्रकार का होता है उदाहरण - पञ्चम प्रकार -

सततं मुसलासक्ता बहुतरगृहकर्मघटनया नृपते।
द्विजपत्नीनां कठिनाः सति भवति कराः सरोजसुकुमाराः।।

यहाँ कठिनता और कोमलता रूप गुणों का विरोध भासित होता है। कालभेद का विचार करने से विरोध का परिहार हो जाता है।

17. सन्देह

यह आरोपमूलक अभेदप्रधान अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है -

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः।

अर्थात् प्रकृत (उपमेय) में अप्रकृत (उपमान) के (कवि को) प्रतिमा से उत्पन्न संशय को सन्देहालङ्कार कहते हैं।

पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं तु न निर्णयः।

अर्थ- यह (प्रिया का मुख) कमल है या चन्द्रमा, कोई निर्णय नहीं हो पा रहा है। जो संशय कवि की प्रतिभा से उत्थित नहीं है, वहाँ यह अलङ्कार नहीं होता है। जैसे-**'स्थाणुर्वा पुरुषोवा'**।

18. भ्रान्तिमान्

यह भी एक आरोपमूलक अभेदप्रधान अलङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है:-

साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः।

अर्थात् सादृश्य के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के ज्ञान को कविप्रतिभोत्थित होने पर भ्रान्तिमान् अलङ्कार कहते हैं। उदाहरण -

मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो बल्लवाः,
कर्णे केरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाशङ्कया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका।।

अर्थ-चटकीली चाँदनी किसके चित्त में भ्रम नहीं पैदा करती ? विमुग्ध गोपजन दूध जानकर गायों के (थनों के) नीचे घड़े लगा रहे हैं, कामिनियाँ कुमुद के धोखे से कान में नील कमल पहन रही हैं और शबरों की स्त्रियाँ मोती समझकर बेर के फल चुन रही हैं। कवि-प्रतिभा से उत्थित न होने कारण 'शुक्तिकायां रजतम्' में यह अलङ्कार नहीं है।

19. निदर्शना

यह एक गम्योपम्याश्रय सादृश्यगर्भ अर्थालङ्कार है। इसका लक्षण इस प्रकार है–

संभवन्वस्तुसंबन्धोऽसंभवन्वापि कुत्रचित्।
यत्रे बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना।।

अर्थात् जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव होकर उनके बिम्बप्रतिबिम्बभाव का बोधन करे, वहाँ निदर्शना होती है। असम्भवद्वस्तुनिदर्शना दो प्रकार की होती है - 1. *एकवाक्यगा* 2. *अनेकवाक्यगा।* अनेकवाक्यगा का उदाहरण दिया जा रहा है –

इदं किलाब्याजमनोहरं वपुस्तपःक्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।

20. व्यतिरेक

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा।
व्यतिरेकः.........................।

अर्थात् उपमान से उपमेय की अधिकता या न्यूनता का वर्णन करने में व्यतिरेक अलंकार होता है।

अकलङ्कं मुखं तस्या न कलङ्की विधुर्यथा।

अर्थ -उसका निष्कलंक मुख सकलंक चन्द्रमा जैसा नहीं है।

यह आधिक्य का उदाहरण है। 'यथा' का प्रयोग होने से यहाँ औपम्य शब्द है।

21. परिसंख्या

प्रश्नपूर्वक या प्रश्न के बिना जहाँ कही हुई वस्तु से अन्य की, शब्द के द्वारा व्यावृत्ति होती है या अर्थतः व्यावृत्ति होती है, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

प्रश्नपूर्वक शब्द व्यवच्छेद का उदाहरण–

किं भूषणं सुदृढमत्र यशो न रत्नं, किं कार्यमार्यचरितं सुकृतं न दोषः।
किं चक्षुरप्रतिहतं धिषणा न नेत्रं जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकम्।।

22. प्रतीप

इसका लक्षण इस प्रकार है–

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते।।

अर्थात् उपमान को उपमेय बनाना या उसको व्यर्थ बताना प्रतीप अलंकार कहलाता है।

त्वल्लोचनसमं पद्मं त्वद्वक्त्रसदृशो विधुः।

अर्थ–(हे सुन्दरि !) कमल तुम्हारे नेत्र के समान है और चन्द्रमा तुम्हारे मुख के समान।

23. विभावना

यह एक विरोधगर्भ अलंकार है। इसका लक्षण इस प्रकार है–

विभावना बिना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।

अर्थात् हेतु के बिना यदि कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो, तो विभावना अलंकार होता है। इसके दो भेद बताये गये हैं- 1- जिसमें निमित्त उक्त हो और 2- जिसमें निमित्त अनुक्त हो। *उदाहरण* -

अनायासकृशं मध्यमशङ्कतरले दृशौ।
अभूषणमनोहारि वपुर्वयसि सुभ्रुवः।।

अर्थ -युवावस्था में सुन्दर भौंहों वाली (इस नायिका) की कमर बिना श्रम के दुबली हो रही है, नेत्र बिना शङ्का के चञ्चल हैं और शरीर बिना भूषण के रमणीय है।

24. विशेषोक्ति

यह भी विरोधगर्भ है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।

अर्थात् हेतु के रहते हुये भी फल के न होने पर विशेषोक्ति अलङ्कार होता है। विभावना की तरह इसके भी दो भेद हैं -1- उक्तनिमित्ता 2- अनुक्तनिमित्ता। उक्तनिमित्ता का उदाहरण दिया जा रहा है –

धनिनोऽपि निरुन्मादा युवानोऽपि न चञ्चलाः।
प्रभवोऽप्यप्रमत्तास्ते महामहिमशालिनः।।

अर्थ-हे महामहिमशाली (पुरुष) धनी होने पर भी उन्माद से रहित हैं, जवान होने पर भी चञ्चल नहीं हैं, प्रभु होने पर भी प्रमादरहित हैं।